International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 9, pp: 363-371 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

प्राचीन भारत में भू-राजस्व व्यवस्था (200 ई0से 600 ई0 तक)

डॉ. ब्रजेश मिश्रा

शोधप्रज्ञ, पटना विश्वविद्यालय, पटना

Date of Submission: 10-11-2020 Date of Acceptance: 24-11-2020

इस काल में अनुदानित भूमि में वृद्धि होने से राजकोष को घाटा हुआ। इस कारण क्षतिपूर्ति हेतु उपज का निश्चित भाग राज्य को नियमित कर के रूप में देने के अलावा, किसानों पर विविध प्रकार के अन्य कर भी राज्य द्वारा लगाये गये। इन सबसे निस्संदेह किसानों की स्थिति में गिरावट आयी।

प्राचीन भारतीय राज्यों को राजस्व व्यवस्था के बारे में पूरी जानकारी थी। बलि, जो प्रारंभ में स्वेच्छा से दिया जानेवाला' योगदान था, बात में अनिवार्य" बना दिया गया। वैदिक काल में प्रजा एवं पराजित शत्रुओं से उपहार में लिया जाता था।* उत्तर वैदिक काल में सर्वप्रथम कृषि उत्पादन आदि पर लगनेवाले राज्य की ओर से कर की अवधारणा पाते हैं, जिसे देना अनिवार्य था। यद्यपि इस काल में इसका कोई दर देखने को नहीं मिलता है। शुल्क नामक एक अन्य कर का भी वैदिक युग में प्रचलन था लेकिन इसके स्वरूप के बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती है। किंतु, जब तक राज्य प्रारंभिक अवस्था में थे, बहुत अधिक करों की जानकारी नहीं मिलती है। मौर्यकाल में सर्वप्रथम राजस्व निर्धारिण व वसूली की प्रक्रिया संबंधी समग्र नियम-कानून बनाये गये। भूमि अनुदान की व्यापकता के साथ-साथ राजकोष की समृद्धि बरकरार रखने हेतु आलोच्य काल (200 ई0 - 600 ई0) में लोगों या प्रजा पर लगनेवाले करों की संख्या में और भी वृद्धि हुई। इसकी जानकारी समृतिग्रंथों, महाकाव्यों, बौद्ध साहित्य एवं कुछ अभिलेखों से मिलती है।

प्राचीन भारत में भू-राजस्व ही राज्य के लिए धन संग्रह का सर्वाधिक स्थायी स्रोत था। गुप्तकाल में बड़े पैमाने पर ब्राह्मण आदि दानभोगियों को भूमि एवं ग्राम दान से भू-राजस्व की प्रथा प्रभावित हुई । इसके संबंध में कात्यायन का मत है कि राजा इसीलिए कर पाने का हकदार है कि वह भूमि का मालिक है [इस सिद्धांत से गुप्तकालीन राजस्व के सिद्धांत को सामंती स्वरूप से बांधा गया। इससे राजा को भूमि अनुदान देने का कानूनी अधिकार प्राप्त हुआ, परंतु राजा का अधिकार इस अर्थ में सीमित था कि अनुदान देते समय उसे सामंतों से परामर्श करना पड़ता था और उन्हें दान की सूचना देनी पड़ती थी जिनका अनुदान भूमि में किसी प्रकार का हित निहित होता था। इस प्रक्रिया से भारतीय राजस्व-व्यवस्था में परत-दर-परत

कर-वसूली की सामंती प्रणाली का प्रारंभ हुआ।

गुप्तकाल राजस्व-व्यवस्था के पुरोधागण करों को राजा के द्वारा प्रजा के संरक्षण का प्रतिदान मानते थे।आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ के अनुसार यदि आकलन किया जाए तो प्रत्येक नागरिक को करों के रूप में राज्य को इस अनुपात में धन देना चाहिए जितना वह राज्य का संरक्षण पाने के कारण कमाता है। कामंदकीय नीतिसार के मतानुसार राजा को कर वसूल करते समय ग्वाले की नीति अपनानी चाहिए जो पहले गायों की सेवा करता है और फिर दूध निकालता है। अर्थात् उसे इतने कर नहीं लगाने चाहिए कि जनता की उत्पादन-शक्ति की खत्म हो जाए। लेकिन उसे अपने रिश्वतखोर आततायी पदाधिकारियों को चूसने का पूरा

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 9, pp: 363-371 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

अधिकार है [कालिदास के अनुसार कर जनता के हित के लिए लगाए जाते हैं। राजा का कर्त्तव्य है कि कर के रूप में वसूले गये धन का इस प्रकार प्रयोग करे कि जनता को उससे हजारों गुणा लाभ हो, जैसे सूर्य सागर से पानी सोख कर उसे फिर कई गुणा करके बरसा देता है।" कालिदास और कामन्दक के सिद्धान्तों की यह गूँज एडम स्मिथ एवं जॉन स्टूअर्ट मिल के विचारों में सुनाई देती है।''

गया तथा नालन्दा के जाली ताम्रपत्रों में समुद्रगुप्त द्वारा ब्राह्मणों को ग्रामों से कर के अतिरिक्त उपरिकर प्राप्त करने का भी अधिकार प्राप्त था। इनके दाता में गृहस्थ, कारीगर आदि दान से मुक्त रखे गये थे। दूसरों से अतिरिक्त कर भी लिया जाता था।*सस्◌ंथायी निवासी इस प्रकार के कर देते थे और अस्थायी निवासी उपरिकर देते थे। अनेक अभिलेखों में उपरिकर का उल्लेख है।" आर० आर० दीक्षितार का मत है कि ये लोग नाममात्र का कर लेते थे। "रघुवंशमें उल्लेख है कि प्रजाहित के लिए ही कर लगाया जाता था।" अभिलेखों से आय के निम्न मुख्य स्रोतों के नाम मिलते हैं:- नियमित कर, सामयिक कर, अर्थ दण्ड, राज्य सम्पत्ति से प्राप्त आय और सामंतो से प्राप्त उपहार |"

दो प्रमुख भूमिकरों का उल्लेख है जो "उद्रंग' और "उपरिकर' के नाम से जाने जाते थे। यह नियमित कर था। लेकिन इन करों में किसान को अपनी ऊपज का कितना हिस्सा देना पड़ता था, यह स्पष्ट नहीं है। संभवत: सम्पन्न किसान सोने के रूप में नकद कर देते थे जिसे 'हिरण्य' कहा जाता था। हिरण्य कृषि उत्पादन का वह कर था जो द्रव्य में प्राप्त किया जाता था।'धान्य अनाज में दिया जाने वाला कृषि उत्पादन कर और हिरण्य को घोषाल ने हल की जोत के आधार पर निर्धारित कर

माना है।" भूमिकर की मात्रा 1/6 होती थी जैसा कि फरीदपूर ताम्रपत्र से ज्ञात होता है।" यह कर ऊपज पर लिया जाता था, बचत पर नहीं ।"

भूमि संबंधी करों की संख्या बढ़ती गई, परन्तु वाणिज्य करों की संख्या घटती गई। संभवत: उपज के चौथे भाग से लेकर छठे भाग तक कर के रूप लिया जाता था। इसके अतिरिक्त जब भी राजकीय सेना गाँवों से गुजरती थी तो उसे खिलाना-पिलाना स्थानीय प्रजा का कर्त्तव्य होता था। ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले राजकीय अधिकारी अपने निर्वाह के लिए किसानों से पशु, अन्न, खाट आदि वस्तुएँ लेते थे। मध्य एवं पश्चिम भारत में ग्रामवासियों से सरकारी सेना और अधिकारियों की सेवा के लिए जो बेगार कराया जाता था वह (विष्टि' कहलाता था, जिसका मनु ने उल्लेख किया है [ग्राम में कुआँ खुदवाना, राष्ट्र में सड़क बनवाने आदि के लिए भी विष्टि' कर लिया जाता था। इसकी मात्रा निश्चित होती थी। पशुओं पर भी कर लगाये जाते थे। चम्मक ताम्रपत्र अभिलेख में गाय, बैल आदि पर इस प्रकार के कर लगाने का उल्लेख मिलता है।" भूतोवात प्रत्यय एक ऐसा कर था जो सम्भवतः देश में उगने वाली तथा बाहर से आनेवाली नशीली वस्तुओं पर लगाया जाता था।" शुल्क के रूप में चुंगी भी वसूली जाती थी जो व्यापारिक कर थी। इसकी मात्रा अलग-अलग वस्तुओं पर अलग-अलग थी। अगर कोई व्यापारी बिना शुल्क चुकाए व्यापार करता था तो दण्ड स्वरूप उसे शुल्क की आठ गुनी राशि देनी पड़ती थी।* क्लिप्त तथा अक्लिप्त करों का उल्लेख भी मिलता है। फाहियान के अनुसार कृषक कृषि उत्पादन का एक भाग कर के रूप में देते थे कालांतर में कर-दाताओं की संख्या घटती गई। फाहियान के कथनानुसार 'मू राजस्व वही लोग चुकाते थे जो राजा की जमीन जोतते थे।॥" राज्य स्वतंत्र किसानों पर कर लगाकर अपना प्रभुत्व कायम रखता था। स्थानीय अधिकारी धीरे-धीरे आर्थिक शक्ति हथियाने लगे और ग्रामीण जनता से तरह-तरह के लाभ, जिनमें बेगारी भी शामिल है, लेने लगे।

'षड़भाग" शब्द का अर्थ है छठा हिस्सा, जो जिन्स के रूप में राजा का अंश होता था। स्मृतियों आदि ग्रंथों में, अन्न में राजा के अंश को 'बलि' कहा गया है न कि 'भाग'। कौटिल्य तथा कालिदास के अनुसार संन्यासियों को भी अपने बचत में षष्ठांश चुकाना पड़ता है। भूमि और फसल के भेद से भू-राजस्व में भी भेद होता था। रूद्रदामन के जूनागढ़ शैल लेख में 'भाग', 'बलि' और 'शुल्क' को नियमित कर कहा गया है। कामन्दक ने राज्य की आय के आठ स्रोत बताए हैं:- कृषि, वणिक्-पथ, दुर्ग, सेतु, कुन्नजर बन्धन, खानें, इमारती लकड़ी तथा

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 9, pp: 363-371 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

शून्य स्थानों का उपनिवेशन। दुर्ग और हाथियों की इस सूची में परिगणन इसलिए हुआ कि इनके कारण व्यापारियों में विश्वास पैदा होता था जिससे वे अधिकाधिक व्यापार कर राज्य को समृद्ध बनाते थे।? राज्य की आय का प्रमुख स्रोत विविध भूमि कर थे, जिनमें 'भाग' सर्वप्रमुख था। मनु ने इसकी मात्रा संभवतः भूमि की उर्वरता के अनुसार उपज का 1,/6, 1/8 या 1/12 भाग मानी है।" कालिदास" एवं नारद जैसे लेखकों ने 4/5 भाग एवं गुप्तोतर युग के शुक्र" ने सिंचाई की सुविधानुसार 1/6, 1/3, 1/4 या 1/2 भाग का उल्लेख किया है। गुप्तकालीन अभिलेखों में इसकी मात्रा अनुल्लिखित है, परन्तु बेग्राम व पहाड़पुर दानपत्रों में राजा को भूमिदान से मिलने वाले षड्भाग का उल्लेख अवश्य मिलता है। यह कर, कम से कम गुप्तकाल तक, खाद्यान्न के रूप में ही लिया जाता था। अर्थशास्त्र में 'भाग' शब्द का प्रयोग कुछ अन्य करों के नाम के साथ राजा का हिस्सा बताने के लिए किया गया है यथा उदक भाग, लवण आदि । गुप्त अभिलेखों में 'भाग' शब्द प्रायः भोग" और "कर' के साथ 'भागभोगकर' अथवा 'भोगभागकर' संयुक्त रूप से मिलता है। 'भाग' शब्द मनुस्मृति में एक कर का नाम है। डी० सी० सरकार ने इसे कृषकों द्वारा राजा को फूलों-फलों, वनस्पतियों, घास, लकड़ी आदि दिये जाने वाले पदार्थ के रूप में समसामयिक भेंट माना है।*

"कर' शब्द करों के लिए सामान्य शब्द भी था और एक विशेष कर का नाम भी था। रूद्रदामन के जूनागढ़-लेख में विष्टि, बेगार तथा प्रणय को आपातकालीन कर माना गया है। सामयिक कर में 'चाटभट प्रवेश दण्ड" का उल्लेख है। चाटभट का अभिप्राय पुलिस से है। जब राजा या प्रमुख कर्मचारी राजकीय यात्रा पर निकलते थे तो उनके साथ पुलिस आदि भी होती थी। उनका व्यय पूरा करने के लिए वहाँ लोगों से यह कर लिया जाता था।" इसी प्रकार अकाल जैसी विपदा के समय विशेष कर लिया जाता था। ग्रामीण लोग जिंसों में कुछ परम्परागत पावने चुकाया करते थे, जिन्हें नापा या तौला जा सकता था।* वे हिरण्य भी अदा करते थे जो सोने का पर्यायवाची था।" कारीगरों को भी कर के रूप में कुछ देना पड़ता था ।" व्यापारियों से उनके मालों पर सीमा-शुल्क लिए जाते थे, जिनका आरोपण और संग्रह सीमा शुल्क अधिकारी करता था।" इस अधिकारी को शायद साहूकारों, सौदागरों और कारीगरों के निगमों से भी संबंध बनाये रखना पड़ता था। ऐसे निगम बसाढ़ (वैशाली), भीटा, बुलन्दशहर, मन्दसौर आदि में काफी सक्रिय थे।

गुप्तकाल विधि ग्रन्थों के आलों में तथा बंगाल की जमीन के सौदों के आधार पर इस काल में राजा अथवा राज्य का अंश पैदावार के छठे हिस्से से अधिक नहीं था। अर्थशास्त्र में अनुशंसित आपातकरों का गुप्तकाल में कोई चिन्ह नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तों का कोई वृहत कर्मचारीवृन्द् नहीं था, इसलिए वर्ग की जगह पर सामंतों का दानभोगी वर्ग सक्रिय था, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, शासकवर्ग तथा कुछ अन्य लोग थे। करदाताओं में वैश्य, व्यापारी एवं सबसे नीचे शोषित-दलित मेहनतकशों का वर्ग था जो अधिकांशतः शूद्र थे। कर का अच्छा-खासा भाग बेगार भी था जो शोषण का सही प्रतीक था। करों की संख्या में घटते नामोल्लेख का यही रहस्य था। वाकाटक अभिलेखों में गुप्त अभिलेखों की अपेक्षा कहीं अधिक करों का उल्लेख हुआ है। राजस्व मुख्यतः जिंसों में वसूल किया जाता था।' धनी किसान संभवतः नकद अदायगी करते थे, क्योंकि इस काल की स्वर्ण मुद्रायें बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं और जमीन खरीदने में तो इनका उपयोग होता ही था। नकद कर वसूलने वाले अधिकारी को हिरण्य सामुदायिक कहा गया है। बंगाल से प्राप्त छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक अभिलेख में इसका उल्लेख हुआ है। औद्रंगिक के साथ ही इसका उल्लेख हुआ है, इसलिए स्पष्ट ही उसका काम नकद कर वसूल करना रहा होगा।

भू-राजस्व का मुख्यस्रोत कृषि उत्पादन से प्राप्त कर ही था जिसे कभी-कभी भाग कहा जाता था।" भूमि पर विशेष कर के लिए भाग शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कौटिल्य ने किया था।/ एक जगह स्वतंत्र रूप से बलि, कर आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है। दूसरे राष्ट्र शीर्षक के अन्तर्गत इसे बलि, कर आदि के साथ वर्णित किया गया है। इस प्रकार भाग उत्पादन में से नियमित रूप से राज्य का हिस्सा होता था। भाग उत्पादन का छठा भाग नहीं होता था।" रूद्रदामन के

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 9, pp: 363-371 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

जूनागढ़ अभिलेख में राजकीय खजाना को बलि, शुल्क और भाग से भरने का निर्देश दिया गया है और सुदर्शन बाँध का निर्माण जनता से बिना कोई कर, विष्टि और प्रणय लिए पूर्ण किए जाने का उल्लेख हुआ है। इन करों के साथ भाग का वर्णन नहीं हैं यह कर केवल भू-राजस्व के रूप में लिया जाता था, अर्थात यह राजा का कृषि उत्पादन में से मिलने वाला भाग समझा जाता था।

गुप्तों के सामंतों के अभिलेखों में भाग का उल्लेख एक अन्य शब्द भोग के साथ मिलता है। " गुप्तकाल के सहित्यिक एवं पुरालेखीय स्रोतों के अनुसार ब्राह्मणों को अनुदान में दी गयी भूमि में से कुछ ही भाग भोग कर से मुक्त थे।

भाग-भोग को संयुक्त रूप से एक मानकर फ्लीट ने 'भाग' अथवा 'अंश' का प्रयोग किया है ।*स्मृतियों में भी भाग और उसका समानार्थी अंश का उल्लेख भू-कर के रूप में हुआ है।" शुक्रनीति के अनुसार भाग राज्य के राजस्व के नौ साधनों में से एक था। गुप्तकाल में भी यह भू-कर अथवा भू-उत्पादन से प्राप्त राज्यांश था। इस प्रकार भाग-भोग को एक शब्द नहीं माना जा सकता। भाग से भिन्न भोग किसी दूसरे कर का नाम था, ऐसा सहज अनुमान किया जा सकता है।

सेलेटोर के अनुसार भोग का उल्लेख मनुस्मृति में है | टीकाकार सर्वज्ञनारायण ने इसका उल्लेख फल-फूल, तरकारी, घास आदि के रूप में नित्य दी जाने वाली भेंट के रूप में किया है। इस प्रकार की व्याख्या टीकाकार ने देवताओं को समर्पित भोग को दृष्टि में रखकर किया था। बाण के हर्षचरित में उल्लेख है कि 'मूर्ख भू-स्वामी गाँवों से निकलकर मार्ग पर खड़े हो गये और वे वयोवृद्ध लोगों के नेतृत्व में जल के घड़े उठाये धक्कम-धुक्की करते हुए सेना के सम्मुख आये और दही, चीनी, मिठाई और फूलों की भेंट लेकर खड़े हो गये और फसलों की रक्षा की याचना करने लगे'।* इससे सेलेटोर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भोग की उक्त प्रथा हर्षकाल में प्रचलित थी। उन्होंने उसके राष्ट्रकूटों में भी प्रचलित होने की बात कही है।इसके अलावे भोग कदाचित् वह कर था जिसे वाकाटक स्तोतों में "'ग्राम-मर्याद' कहा गया है।" वास्तव में भोग भी भाग की तरह ही एक नियमित कर था। राज्य-अधिकृत भूमि के उपभोग के बदले जो कर था वही भोग था।* इनके अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण कर बलि था। मैक्डोनल्ड और कीथ के अनुसार यह प्रकृति के आरम्भ से ही प्रजा पर लगाये जाने वाला कर था, जिसका देना अथवा न देना प्रजा पर निर्भर नहीं था। अर्थशास्त्र के अनुसार बलि उत्पादन में से राजा का सामान्य हिस्सा होती थी |"मिलिन्दपन्हों के अनुसार बलि आपातकाल में लगाये जाने वाला कर था।* इसे धार्मिक कर के रूप में रखा गया है। मैती के अनुसार यह करू और संज्ञा भूमि पर लगाया गया धार्मिक कर था जो गुप्तकाल में भूमि अनुदान पर भी लगाया जाता था।*

रूद्रदामन के जुनागढ़ अभिलेख के अनुसार भी बलि कर का ही रूप था। इसके साथ-साथ राजस्व सम्बन्धी अन्य शब्दों का भी वर्णन है। गुप्ताकालन राजकोषीय शब्दावली में बलि शब्द का उल्लेख पाँच करों के रूप में हुआ है। प्राचीन भारतीय भू-राजस्व व्यवस्था में बलि शब्द का प्रयोग शताब्दियों पहले से ही होता आ रहा था। अन्य साहित्यिक ग्रंथों में बलि का प्रमुख कर के रूप में उल्लेख हुआ है, लेकिन भाग का नहीं। वृहस्पति ने भी बलि का इसी प्रकार वर्णन किया है।" ईसा की पाँचवीं शताब्दी में अमरकोश में शुल्क और कर के पर्यायवाची के रूप में इसका उल्लेख किया गया है।"

इन करों की तरह ही हिरण्य भू-राजस्व का एक अन्य रूप था। यू० एन०

घोषाल ने हिरण्य को व्यापारिक फसलों पर लगाया जानेवाला कर बतलाया है। सन् 592 के एक अभिलेख के अनुसार गन्ने की खेती एक निश्चित भू-भाग पर कीजाती थी जिस सपर 32 चाँदी के सिक्के का कर निर्धारित था। लेकिन धार्मिक दान में दी गयी भूमि के लिए कर $2\frac{1}{2}$ चाँदी के सिक्के के रूप में लगाया जाता था।" हिरण्य एक विशेष प्रकार का कर था जो व्यापारिक फसलों पर लगाया जाता था। डी० एन० झा के अनुसार इस काल में सिंचाई पर कोई कर नहीं था, क्योंकि राज्य का मुख्य दायित्व सिंचाई की आवश्यकता की पूर्ति करना था।

गुप्तकाल के राजकोषीय शब्दों में ऊपरिकर और उद्रंग महत्त्वपूर्ण हैं। इनका वर्णन सिर्फ गुप्तकाल के अभिलेखों में मिलता है, मौर्योत्तर काल के अन्य स्रोतों में नहीं फ्लीट के अनुसार ऊपरीकर दो शब्दों, ऊपरी और

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 9, pp: 363-371 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

मध्यम, से बना है। यह कर उन किसानों से लिया जाता था जिनका भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता था। इस सम्बन्ध में एल० डी० बार्नेट ने घोषाल के विचार को खंडित किया है। उनका कहना है कि ऊपरिकर थोड़ा बहुत तमिल से मिलता-जुलता है। संस्कृत, बंगाली आदि भाषाओं में ऊपरिकर का अर्थ अतिरिक्त कर से लगाया गया है।

यू० एन० घोषाल के अनुसार उद्रंग स्थायी किसानों से लिया जाता था जबक ऊपरीकर अस्थायी किसानों से लिया जाता था। ऊपरिकर मराठी शब्द ऊपरी से बना है जिसका अर्थ होता है वे किसान जो गाँव से संबंध नहीं रखते, लेकिन अस्थायी रूप से वहाँ रहते थे, जहाँ वे समय-समय पर कृषि कार्य करने जाते थे। उल्तेकर के अनुसार ऊपरिकर भोग की तरह ही एक प्रकार का कर था जिसमें कर वस्तु के रूप में दिया जाता था। * लेकिन डी० एन० झा के अनुसार इस काल के सन्दर्भ में ये दोनों ही मत उचित नहीं लगते हैं।* ऊपरिकर एक तरह के स्थायी रैयत से ही लेवी के रूप में लिया जाता था। ग्राम के राजस्व का पूरा भार मालिक के ऊपर रहता था। और वही रैयतों के बीच जमीन बाँटता था। उद्रंग शब्द का अर्थ पानी का कर था। लेकिन घोषाल का विचार सही नहीं जँचता। महाराजा जयनाथ के करीतलाई ताम्रपत्र (ईस्वी सन् 493-494) में ऊपरिकर और उद्रंग को भाग भोग कर की तरह ही स्थान दिया गया है| ऊपरिकर भाग से भिन्न था।

उद्रंग का अर्थफसल में से राजा का हिस्सा नहीं हो सकता। घोषाल के अनुसार उद्रंग स्थायी काश्तकारों से लिया जाने वाला कर था।" एस० के० मैती के अनुसार उद्रंग शब्द संस्कृत के शब्द उदरक से बना है और इसलिए इसका अर्थ कुछ जलकर की तरह था।* लेकिन इस काल में जलकर का ही स्वतंत्र रूप में उल्लेख नहीं मिलता। मैती के दूसरे विवरण के अनुसार उद्रंग, द्रंगा की ही तरह था, जिसका अर्थ बाद की रचना राजतरंगिणी में निरीक्षण केन्द्र के रूप में किया गया है। अतएव इसका अभिप्राय रक्षा शुल्क से था।"

गुप्तकालीन करों कें एक हलिकाकर भी था। हलिकाकर का विवरण पूर्व के कालों में कहीं नहीं मिलता है। इसका वर्णन सिर्फ सर्वनाथ के दो दस्तावेजों में मिलता है, जिसका शासन पाँचवीं शताब्दी के अन्त और छठी शताब्दी के प्रारम्भ में था।" घोषाल के अनुसार यह जोताई कर था।* लेकिन इस काल में हल पर कोई कर लगाये जाने का प्रमाण नहीं मिलता। मैती के अनुसार यह हल पर लगाये जाने वाला कोई अतिरिक्त कर नहीं हो सकता | हलिकर भूमि के मापन के रूप में कोई विशेष कर के रूप में लिया जाता था। कालांतर में भूमि पर कर उसके क्षेत्रफल के आधार पर लगाया जाने लगा। अन्य उपजाऊ क्षेत्रों में भी काश्तकारों को भूस्वामियों की जमीन में हल चलाने और उनके लिए तरह-तरह के दूसरे काम करने को विवश किया जाता था। पूरे गांगेय क्षेत्र में यह प्रथा 'हरी' और 'बेगारी' के नाम से जानी जाती है। 'हरी' के लिए मध्यकालीन शब्द 'हलिकाकर'" है और 'बेगारी' के लिए 'विष्टि' जिससे 'बैठ-बेगारी' शब्द व्युत्पन्न हुआ है।

गुप्त सामंतो के कुछ अभिलेखों में भूत-प्रत्यय शब्द का उल्लेख है। उल्तेकर ने इसकी व्याख्या अस्तित्व में आने वाली वस्तु पर कर के रूप में किया है।* इसके अनुसार यह राज्य में बनने वाली वस्तुओं पर लगने वाला कर था। अन्य अभिलेखों से जान पड़ता है कि कारीगरों को भी कुछ कर देना पड़ता था, और व्यापारियों से भी व्यापार की वस्तुओं पर चुंगी ली जाती थी जिसे चुंगी अधिकारी लगाते और उगाहते थे।" अन्य करों में दिव्या, मेघा, धान्या आदि भी था। दिव्या का उल्लेख राजा व्याघ्रसेन के सूरत अभिलेख में मिलता है, जिसका अर्थ होता है - कुछ जिसे देना है।" इसका विवरण सर्वादित्य विस्थी पारिहारण में मिलता है जिसका सभी करों और बलपूर्वक मजदूरी को छोड़कर सभी प्रकार के करों के रूप में लगाया जाता थ। मेया का विवरण पश्चिमी और केन्द्रीय भागों के राजकोषीय दस्तावेजों में मिलता है। हर्ष के मधुवन ताम्रलेख में हिरण्य विवरण मिलता है" , जिसका प्रयोग भाग तथा भोगकर के विशेषण के रूप में किया गया है। इस वर्णन के अनुसार नापे या तौले जाने वाली वस्तुओं पर राजा का सामान्य राजस्व था। इस काल के दस्तावेजों में कहीं भी भाग, भोगकर आदि के साथ मेया का उल्लेख नहीं हुआ है। अधिकांश भूमि अनुदान पत्रों में भाग भोगकर की जगह 'धान्य भोगकर' का प्रयोग किया गया है। इससे

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 9, pp: 363-371 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

स्पष्ट है कि धान्या का उपयोग भाग की जगह होता था धारसेन द्वितीय के एक अनुदान में स्वधन्य भोग भाग हिरण्य देया का उल्लेख किया गया है। इसके द्वारा भाग, भोग और धन्या के बीच तुलना की जा सकती है घोषाल का मत है कि धान्या एक निश्चित कर राशि थी, जबकि भाग उत्पादन का एक निश्चित हिस्सा ।"

राजा कभी-कभी दूध के लिए गाय ले लिया करते थे और सरकारी जमीन को जोतने के लिए बैल ले लेते थे। इसीलिए कट्टा-भट्टा जो दान था उसे कभी-कभी मना कर दिया जाता था। बूलर का मत है कि स्थायी रूप से किसानों को सरकारी जमीन को जोतने के लिए इस तरह की सुविधा देनी पड़ती थी भगवानलाल इन्द्रजी ने इसका अर्थ कट्टा-भट्टा माना है। डाकुओं के खिलाफ जो पुलिस रखी जाती थी उसी को खिलाने के लिए कट्टा-भट्टा लिया जाता था। यह कर सरकारी नौकरों को हमेशा खुश रखने के लिए लिया जाता था। जमीन की जो बिक्री होती थी, उसी से लोग कट्टा-भट्टा लेते थे। ग्रामवासियों द्वारा वे लोग घृणित समझे जाते थे। साधारण अर्थों में कट्टा-भट्टा एक अनावश्यक कर था

यह उन सरकारी व्यक्तियों के लिए लिया जाता था जो रखवाली करते थे, राजस्व वसूल करते थे और चोर को पकड़ते थे।

गुप्तकाल में किसानों के अतिरिक्त अन्य नागरिकों से भी कर वसूल किये जाते थे। अमरकोश में, प्रवरसेन द्वितीय के सिवनी दानपत्र तथा जयनाथ के खोह दानपत्र में 'शुल्क' (चुंगी) का उल्लेख मिलता है। बिहार-स्तम्भ लेख में 'शौल्किक' (शुल्क वसूल करने वाला) नाम के पदाधिकारी की चर्चा है तथा धर्मादित्य के एक लेख में गोपाल स्वामी नामक "व्यापार कारण्य' (व्यापार को नियंत्रित करने वाला) की। यह घाट (घट्टा दिदेय) और नगर-द्वार आदि पर चुकाया जाता था।" नारद ने शुल्क विषयक विस्तृत नियम दिये हैं।* उसने ब्राह्मणों को, चाहे वे व्यापारी हो, शुल्क से मुक्त माना है। इसी प्रकार वह भूमि में अकस्मात् मिली निधियों के विषय में नियम देता है कि अन्य वर्णों को तो उन्हें राजा को सौंप देना चाहिए, लेकिन ब्राह्मण ऐसा धन स्वयं रख सकता था।* अभिलेखों में भूमिदान दिये जाने के बाद उसमें मिलने वाली निधियों, खानों व नमक पर राजा का अधिकार माना गया है परन्तु कभी-कभी राजा इन पर भी अपना अधिकार छोड़ देता था। चार वाकाटक दानपत्रों में 'क्लिप्त' तथा "उपक्लिप्त' का उल्लेख मिलता है। घोषाल तथा राम शास्त्री इनको एक निश्चित कर मानते हैं तथा डी०सी० सरकार बिक्री कर। मैती ने इन्हें कर न मानकर भोगावधि से सम्बन्धित एक पारिभाषिक शब्द बताया है। राज्य की आय का एक स्रोत चोरों से वसूल होने वाला जुर्माना था, जिसको वसूल करने का अधिकार राजा कभी-कभी भूमिदान पाने वालों को देता था।* फाहियान के अनुसार भी गुप्तकाल में अपराधों की मात्रा तो कम थी, फिर भी अपराधी को कभी-कभी अर्थ दण्ड देना पड़ता था। यह भी राजा की आमदनी का एक साधन था लेकिन इसकी मात्रा बहुत थोड़ी थी।

पलल्लव अभिलेखों में दान भूमि के अठारह परिहाथों से दिये जाने की चर्चा है।* लेकिन इसकी गिनती नहीं की जाती थी" इस काल में भूमि अनुदान व्यवस्था का वर्णन पूर्व की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप में हुआ है। आधुनिक इन्दौर से संबंधित दो

अभिलेख हैं, जिनमें एक महाराज स्वामीदास (386-387 ई०) और दूसरा महराजा भूर्पदा (426-427 ई०) के समय का है।* इनमें ब्राह्मणों को भूमि अनुदान दिए जाने का वर्णन है। चूंकि यहाँ कृषि मालिकों को दान में प्राप्त भूमि को दर्शाया गया है।

इस काल की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भू-राजस्व से संबंधित अनेक करों को लागू करने का प्रावधान था जिनका वहन गाँवों में रहने वाले लोग करते थे। गुप्तकाल में पहले की तरह ही उत्पादन का 4,/6 भाग राजा को दिया जाता था जिसे षड़भागिन कहा गया है।" कालिदास के अनुसार राजा भूमि के उत्पादन के छठे भाग का अधिकारी होता था कालिदास ने यह भी लिखा है कि संन्यासी को भी अपने प्रायश्चित का छठा भाग राजा को देना पड़ता था, और नदी के किनारे उनके द्वारा जमा किय गये चावल का छठा भाग उन्हें राजकीय अधिकारियों को देना पड़ता था।

फाहियान ने भी कुछ नये करों की जानकारी दी है। कामन्दक द्वारा भी कुछ नये कानून बनाये गये थे जो सामान्य जनता पर कर का बोझ कम करता था। फाहियान ने लिखा है कि कभी-कभी जब कोई व्यक्ति

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 9, pp: 363-371 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

लगाये गये नये करों को देने में असमर्थ हो जाता था तो उसे अपना गाँ छोड़ना पड़ता था और दान में दिये गये नये गाँवों में जाकर उन्हें शरण लेनी पड़ती थी।" राजा ऐसे दान प्राप्तकर्त्ताओं को चेतावनी देता था कि वे किसी वैसे व्यक्ति को अपने गाँव में प्रवेश नहीं करने दें जिसने पूर्व में राजकोष में कर नहीं दिये हों तथा जिसकी भूमि इस कारण छीनी गयी हो। फाहियान के वर्णनों से ज्ञात होता है कि केवल वे ही व्यक्ति अपने उत्पादन का निश्चित भाग राजा को देते थे जो कृषि कार्य किया करते थे।" भूमिकर के अतिरिक्त शक्कर और नील तैयार करने वालों पर राजकर लगाया जाता था। पूर्वकालीन स्मृतियों में भी कहा गया है कि राजा शिल्पियों से भी कर के बदले में एक दिन बेगार लेने का हकदार था।

राजस्व का अन्य स्रोत भूमि रत्न, गड़ा हुआ गुप्तथन, खान, नमक इत्यादि थे। कुछ भूमि राजा के सीधे स्वामित्व में होती थी। उसके विक्रय से प्राप्त सम्पत्ति आय का एक स्रोत था। भूमि के भीतर गड़ी सम्पत्ति कभी-कभी किसी को मिल जाती थी। उसमें ब्राह्मणों को छोड़कर दूसरे वर्णों द्वारा प्राप्त होने वाली सम्पत्ति राजा की हो जाती थी।" मृत व्यक्ति की सम्पति, जो मरते समय वह किसी को नहीं दिया रहता था, का कोई उचित उत्तराधिकारी नहीं होता तो वह राजा की हो जाती थी* सामन्त तथा अधीनस्थ राजा अपने स्वामी राजा को उपहार भेंट देते थे जिससे स्वामी की आय में वृद्धि हो जाती थी। समुद्रगुप्त ने दक्षिण के राजाओं को जब जीतकर उन्हें स्वतंत्र किया जो उन्होंने समुद्रगुप्त को उपहार दिया।* इसी प्रकार सिंहलद्वीप के राजा ने बोधगया में बिहार निर्माण हेतु पाटलिपुत्र के शासकों को उपहार भेजा था।

गुप्तकाल में कर चुकाने के निश्चित नियम थे। नारद के अनुसार बिक्री तथ चुंगी चुकाने के लिए व्यापारी को चौकी पर जाकर उसे चुकाना पड़ता था। जो इस नियम की अवहेलना करता, बिक्री के विषय में गलत आंकड़ा बताता, बिक्री का सही हिसाब नहीं बताता तो उसको आठ गुणा दंड देना पड़ता था। वैशाली की एक मुहर से 'रणभाण्डागाराधिकरण' की जानकारी होती है। इससे स्पष्ट है कि सैन्य राजस्व विभाग तथा सामान्य विभाग अलग-अलग थे।कर से आय के व्यय के लिए बड़ी व्यवस्थित योजना थी। कालिदास के अनुसार गुप्त शासक प्रजाहित के लिए ही कर का संग्रह करते थे।" आय को देखकर व्यय का लेखा-जोखा तैयार किया जाता था।" फाहियान के अनुसार गुप्तकाल के कर्मचारी वेतनभोगी थे। अतएव राजकीय व्यय का एक महत्वपूर्ण मद वेतन होता था। अभिलेखों के आधार पर ज्ञात होता है कि गुप्त शासक लोकहित का कार्य करते थे, जैस- नहर खुदवाना, विद्यालय बनवाना आदि | ब्राह्मणों को इसी में से राजहित के लिए आग्रहर दान भी दिया जाता था। आपातकला के लिए राजा कुछ सम्पति को संचित करके रखता था। इसे 'व्यय-प्रत्यय" नाम दिया गया है।*

जनसाधारण की आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं थी क्यांकि उस पर अनेक नये करों का बोझ पड़ गयां अनेक वित्तीय इकाइयाँ भी दृष्टिगोचर होती है। जो विकेंद्रित कर प्रणाली की तर्कसंगत परिणति थी। गुप्तकाल के सभी अनुदानों में राजस्व के विभिन्न रूपों की चर्चा की गई है, किन्तु गुप्तकाल के उद्रंग तथा ऊपरिकर विवाद परे नहीं थे। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि गुप्तकाल में सामंतीवादी व्यवस्था का बड़े पैमाने पर प्रसार हुआ। सामंती समाज में ब्राह्मणों एवं अन्य उच्च जातीय लोगों का वर्चस्व था। सामंती समाज से पता चलता है कि सुविधाओं की सूची में ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्गों का सर्वोच्च स्थान था एवं राजा उनका ही वास्तविक रक्षक था। वैश्य जायितों में धनाढ्य एवं व्यापारी वर्ग उच्च जातियों के साथ गोलबंद होकर मेहनतकश वर्ग का शोषण करता था। अन्य वैश्य एवं शूद्र वर्ग समग्र रूप से पीड़ित-दलित थे। यही सामाजिक संरचना भारतीय समाज में बरकरार रह गयी।

संदर्भ ग्रंथ

1. ऋग्वेद, X 173.6
2. ऐतरेय ब्राह्मण: VII 29; शत्पथ ब्राह्मण:XI.2.6.14
3. वही, VII, 29
4. अथर्ववेद, III.29
5. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ 115
6. कात्यायनस्मृति, श्लोक 16

7. नारद स्मृति, 18.48
8. कामन्दक नीतिसार, 6.46
9. वही, 5.85
10. रघुवंश, 1.18
11. श्रीराम गोयल, गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, पृ० 401
12. सी० आई० आई०, 3
13. हस्तिन का झझवाँ दानपत्र, वही, पृ० 107
14. दीक्षितार, हिन्दू ऐडमिनिस्ट्रेटिम सिस्टम, पृ० 104
15. प्रजा नामेव भूत्यर्थ सताभ्यो बलिम ग्रहीता। रघुवंश, 1.18
16. रामशरण शर्मा, पूर्वोद्धृत, पृ० 370
17. सरकार, वही, पृ० 272
18. वही, पृ० 213
19. जे० ए० एस० बी० 1911
20. एस० के० मैती, पूर्वोद्धृत, पृ० 87
21. मनुस्मृति, 7.138
22. सी० आई० आई०, पार्ट 2, पृ० 238
23. ए० एस० अल्टेकर, राष्ट्रकुट एण्ड देयर टाइम्स, पृ० 229, हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ० 227
24. मनुस्मृति, 8.4
25. लेग्गे, पृ० 42.3
26. राधाकृष्ण चौधरी, पूर्वोद्धृत, पृ० 212
27. एस० के० मैती, पूर्वोद्धृत, पृ० 401
28. वही,
29. श्री राम गोयल, पूर्वोद्धृत, पृ० 77
30. मनुस्मृति, 7.130-32
31. रघुवंश, 5.8
32. नारद स्मृति, 18.48
33. शुक्रनीति, 4.2.227-30
34. रघुवंश, 1.145, 5.41
35. श्री राम गोयल, पूर्वोद्धृत, पृ० 402
36. फ्लीट, गुप्ता इन्सक्रिप्संश, नं० 23,26,28
37. कां० इं० इं०, 3.60 पंक्ति 12
38. ए० ई० 13, सं० 8, पंक्ति 3
39. वही,
40. वही, सं० 12, पंक्ति 29
41. 44. रामशरण शर्मा, पूर्वोद्धृत, पृ० 310
42. स० ई० 3, सं० 46, पंक्ति 4
43. डी० एन० झा, रेवेन्यू सिस्टम इन पोस्ट मौर्या एण्ड गुप्ता टाइम्स, पृ० 42
44. ए० एस०, 2.6
45. वही, 2.15
46. यू० एन० घोषाल, सम हिन्दू फिजिकल टर्म्स डिस्कस्ड, पृ० 203
47. का० इ० इ०, 3, पृ० 132
48. सी० ई०, 3.26, 1.27, 1.11
49. वही, पृ० 254 पा० टि०
50. गौतम स्मृति, 10.24-27, मनुस्मृति 8.30
51. मनुस्मृति 8.5
52. हर्षचरित, पृ० 208
53. इ० ए० 11, पृ० 111
54. का० इ० ३०, 3,
55. परमेश्वरी लाल गुप्त, पूर्वोद्धृत, पृ० 402
56. यू० एन० घोषाल पूर्वोद्धृत, पृ० 203
57. _मिलिन्दपन्हो, पृ० 146
58. एस० के० मैती, पूर्वोद्धृत, पृ० 61
59. वृहस्पति स्मृति, 2.20
60. अमरकोश, 2.8.28
61. इ० आई० 15.140-30
62. सी० ई० 3.1
63. अल्टेकर, पूर्वोद्धृत, पृ० 216
64. डी० एन० झा, पूर्वोद्धृत, पृ० 54
65. सी० ई० 2.3, न० 26, 11.8-10.9
66. यू० एन० घोषाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 210
67. एस० के० मैती, पूर्वोद्धृत, पृ० 62
68. वही,
69. राजतरंगिणी, पृ० 291-292
70. द सोहवाल कॉपर प्लेट्स ऑफ द ईयार, 191,1.10
71. यू० एन० घोषाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 213
72. एस० के० मैती, पूर्वोद्धृत, पृ० 63
73. वाई० बी० सिंह, हलिकाकरः क्रिस्टलाइजेशन ऑफ ए प्रैक्टिस इन टु ए टैक्स, भारतीय इतिहास कांग्रेस के 1982 में कुरुक्षेत्र में आयोजित तैंतालीसवें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र |
74. वाकाटक गुप्ता एज, पृ० 291
75. ए० इ० 23, सं० 8० पं० 2

76. वही, सं० 12, पृ० 29
77. इ० आई०, 11, नं० 21
78. 'मधुवन ताम्रलेख', 7, 22.1.17
79. यू० एन० घोषाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 219
80. श्री राम गोयल, पूर्वोद्धृत, पृ० 403
81. नारद स्मृति, 3.12-13
82. वही, 18.38
83. वही, 7.6-7
84. श्री राम गोयल, पूर्वोद्धृत, पृ० 403
85. डी० एन० झा, पूर्वोद्धृत, पृ० 38
86. सेलेक्ट इन्सक्रिप्संश, पृ० 439-40
87. ठ० आई० 15.16
88. विष्णु स्मृति, 3.22
89. रघुवंश, 2.66
90. द स्पूर्यस गया प्लेट ऑफ समुद्रगुप्त, पृ० 257
91. ट्रेवलस ऑफ फाहियान, पृ० 42-43
92. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.34-5
93. वशिष्ट स्मृति, 17.73
94. सर्व करदानाज्ञाकरण प्रभागमन..... प्रयाग स्तंभ लेख,
95. एच० सी० राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐन्शियेण्ज इण्डिया, पृ० 37
96. रघुवंश (प्रजानामेवमभूत्यर्थ स ताभ्यो बल्मिग्रहीत)
97. आयंगर, एस्पेक्ट ऑफ पॉलिटी, पृ० 68,
98. वृहस्पति स्मृति, 28